दैनिक भास्कर

Date: 17-01-26

अपने ही फैसलों से बार-बार पलट क्यों जाती है अदालत

आरती जेरथ, (राजनीतिक टिप्पणीकार)

जब सुप्रीम कोर्ट अपने ही फैसलों को बार-बार बदलता है तो यह सार्वजनिक चिंता का विषय बन जाता है। वर्ष 2025 में शीर्ष अदालत ने अपने आठ फैसलों को पलट दिया। कई आदेश तो पारित होने के कुछ ही सप्ताह में बदले गए। ऐसा नहीं है कि सुप्रीम कोर्ट ने अतीत में अपने फैसलों में बदलाव या संशोधन न किए हों, लेकिन ऐसा अकसर तब हुआ था, जब किसी पक्ष ने किसी मामले की समीक्षा के लिए बड़ी पीठ में अपील की हो। लेकिन हालिया घटनाक्रम इसलिए अलग हैं, क्योंकि ये फैसले कोर्ट के भीतर ही पलट दिए गए। दूसरे शब्दों में, सुप्रीम कोर्ट ने स्वतः संज्ञान लेकर मामलों को अन्य पीठ के पास भेजा, जिसने पहली बेंच के निर्णय को बदल दिया।

विधि विशेषज्ञों का कहना है कि सर्वोच्च अदालत में ऐसा पहली बार हुआ है। यदि यह चलन जारी रहता है तो ये न्यायशास्त्र के भविष्य के लिए चिंताजनक है, क्योंकि इससे सुप्रीम कोर्ट के फैसलों की वैधता कमजोर होगी। जिन विषयों पर फैसले वापस लिए गए, उनमें न्यायिक अनुशासन से लेकर पर्यावरण मामले, कॉर्पोरेट मुद्दे और आवारा कुत्तों तक के प्रकरण शामिल हैं। गौर करने वाली बात यह है कि बदले गए आठ फैसलों में से तीन जस्टिस जेबी पारदीवाला की पीठ ने पारित किए थे, जो भविष्य में भारत के प्रधान न्यायाधीश (सीजेआई) बनने जा रहे हैं। यह भी दिलचस्प है कि इन फैसलों को बदलने की शुरुआत हाल ही में सीजेआई पद से सेवानिवृत्त हुए जस्टिस बीआर गवई के कार्यकाल में हुई। मौजूदा सीजेआई सूर्यकांत के कार्यकाल में भी यह सिलसिला जारी है। सबसे चौंकाने वाला उलटफेर अरावली खनन से जुड़े फैसले का था।

तत्कालीन सीजेआई गवई की अध्यक्षता वाली पीठ ने 20 नवंबर को खनन नियमन के लिए एक सरकारी समिति द्वारा सुझाई गई ऊंचाई पर आधारित परिभाषा को मंजूर कर लिया था। पर्यावरणविदों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के विरोध के बाद सीजेआई सूर्यकांत की अध्यक्षता वाली पीठ ने उस फैसले पर रोक लगा दी और इस मुद्दे के पुनर्मूल्यांकन के लिए विषय विशेषज्ञों की एक नई समिति गठित कर दी। नए आदेश में कहा गया कि 'जनभावना' को देखते हुए पूर्व के फैसले की समीक्षा की जा रही है। हालांकि सार्वजनिक विरोध की प्रतिक्रिया में न्यायिक पुनर्विचार का कदम तो स्वागत योग्य है, लेकिन यह सवाल भी खड़े करता है कि पहले वाला फैसला किस तरह किया गया था। क्या पिछली पीठ ने दिल्ली और हरियाणा के 'ग्रीन लंग्स' मानी जाने वाली अरावली पहाड़ियों के लिए सरकारी समिति की ऊंचाई-आधारित परिभाषा को स्वीकारने से पहले पर्याप्त मंथन नहीं किया? या फिर यह स्टे लोकप्रियता बटोरने का प्रयास है?

पूर्व के फैसलों को पलटने की टाइमिंग से तो यह रहस्य और गहरा जाता है। अरावली में खनन को हरी झंडी देने वाला पहला फैसला तत्कालीन सीजेआई गवई के सेवानिवृत्त होने से महज तीन दिन पहले, 20 नवंबर को आया। इसके पांच सप्ताह

बाद 29 दिसंबर को इस फैसले को पलट दिया गया। शीतकालीन अवकाश के बीच सीजेआई सूर्यकांत ने इसके लिए एक विशेष पीठ गठित की। अदालतों से, खासकर सुप्रीम कोर्ट से अपेक्षा की जाती है कि वे कोई आदेश पारित करने से पहले सभी कानूनी पहलुओं पर सावधानी से विचार करें। एक बार पारित होने पर आदेश सर्वमान्य होना चाहिए। जस्टिस दीपांकर दत्ता और जस्टिस एजी मसीह की पीठ ने फैसलों को वापस लेने के इस नए चलन के खतरों को लेकर चेतावनी दी थी। और यह चेतावनी अरावली में खनन से जुड़े फैसले को बदलने के ठीक पहले आई थी। स्पष्ट है कि उनकी सावधानी भरी बातों को अनसुना कर दिया गया। दोनों न्यायाधीशों ने कहा था कि 'किसी विधिक मसले पर किसी पीठ द्वारा दिए गए फैसले से विवाद समाप्त हो जाना चाहिए, क्योंकि वह अंतिम होता है... लेकिन किसी फैसले को केवल इस आधार पर री-ओपन किया जाए, क्योंकि बाद में कोई दूसरा दृष्टिकोण अधिक बेहतर प्रतीत होता है, इससे तो अनुच्छेद 141 को लागू करने का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा...। इससे न्यायालय की अथॉरिटी और निर्णयों के मूल्य कमजोर होंगे।'

सुप्रीम कोर्ट अभी सरकारी दबाव, जनहित और संविधान के बीच एक संतुलित लाइन पर चल रहा है। वर्ष 2025 ने इन तीनों के बीच संतुलन बनाने की कठिनाइयों को उजागर किया है। अब देखना यह है कि नए सीजेआई के साथ 2026 क्या लेकर आता है। शासन में संवैधानिकता क्या है, इसे तय करने के लिए न्यायपालिका ही अंतिम अथॉरिटी है।

दैनिक जागरण

Date: 17-01-26

अपने भविष्य को आकार देता भारत

पीयूष गोयल, (लेखक केंद्रीय वाणिज्य और उद्योग मंत्री हैं)

वर्ष 2026 भारत के वाणिज्य और उद्योग परिदृश्य में नया विश्वास और आशावाद लेकर आया है। 2025 में उठाए गए निर्णायक कदम व्यापार और निवेश को तेजी से आगे बढ़ाने, छोटे व्यवसायों और स्टार्टअप्स के लिए वैश्विक बाजार तक पहुंच बढ़ाने, रोजगार सृजन करने और प्रत्येक नागरिक के लिए ईज ऑफ लिविंग को बढ़ावा देने के प्रधानमंत्री मोदी जी के मिशन को और मजबूत करने वाले रहे। मोदी सरकार की एक प्रमुख पहल स्टार्टअप्स को बढ़ावा देना रही है। आज भारत में दो लाख से अधिक सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त स्टार्टअप्स हैं। स्टार्टअप्स को समर्थन देने का उद्देश्य आर्थिक विकास को तेज करना, रोजगार के अवसर पैदा करना और प्रत्येक नागरिक, विशेष रूप से गरीबों के जीवन स्तर में सुधार करना है। आज भारत वैश्विक स्तर पर एक भरोसेमंद और विश्वसनीय व्यापार साझेदार के रूप में पहचाना जा रहा है। वैश्विक अनिश्चितताओं के बावजूद वित्त वर्ष 2024-25 में भारत का कुल निर्यात छह प्रतिशत बढ़कर रिकार्ड 825.25 अरब अमेरिकी डॉलर

तक पहुंच गया। निर्यातकों को और समर्थन देने के लिए सरकार ने 25,060 करोड़ रुपये का निर्यात प्रोत्साहन मिशन घोषित किया है।

रिपीलिंग एंड एमेंडमेंट एक्ट, 2025 के तहत 71 पुराने और अप्रासंगिक कानूनों को समाप्त किया गया है, जिनमें से कुछ वर्ष 1886 के थे। जन विश्वास पहल के अंतर्गत मोदी सरकार ने छोटे उल्लंघनों से जुड़े कई आपराधिक प्रविधानों को हटाया है। ये सुधार शासन को बेहतर बनाते हैं, कारोबार में आसानी बढ़ाते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि भारत की कानूनी व्यवस्था आधुनिक अर्थव्यवस्था के अनुरूप हो। पिछले वर्ष संसद के मानसून सत्र में शिपिंग और पोर्ट्स से जुड़े पांच ऐतिहासिक विधेयक पारित किए गए। इन कानूनों से दस्तावेजीकरण सरल हुआ है, विवाद निपटान आसान हुआ है और लाजिस्टिक्स लागत में उल्लेखनीय कमी आई है। वाणिज्य के मोर्चे पर विदेश व्यापार महानिदेशालय ने पारदर्शी और सहायक नीतियों के जरिये निर्यातकों का सक्रिय रूप से समर्थन किया है। इन पहलों से व्यापारियों, स्टार्टअप्स और छोटे उद्यमियों की उद्यमशीलता को नई उड़ान मिली है।

भारत की व्यापार और निवेश रणनीति का मूल मंत्र स्थानीय उद्यमियों विशेषकर छोटे व्यवसायों, स्टार्टअप्स, किसानों और कारीगरों को सशक्त बनाकर उन्हें वैश्विक सफलता दिलाना है। इसी के अंतर्गत भारत ने पिछले वर्ष तीन मुक्त व्यापार समझौते (एफटीए) किए, जिनसे भारतीय उत्पादों को यूके, न्यूजीलैंड और ओमान जैसे विकसित बाजारों में ड्यूटी-फ्री पहुंच मिली। ये एफटीए भी सुधार प्रक्रिया का हिस्सा हैं। यूपीए सरकार के विपरीत मोदी सरकार ने विकसित देशों के साथ संतुलित और लाभकारी समझौतों को प्राथमिकता दी है। इन एफटीए से रोजगार सृजन तेज होगा, निवेश बढ़ेगा और छोटे व्यवसायों, छात्रों, महिलाओं, किसानों और युवाओं के लिए परिवर्तनकारी अवसर खुलेंगे। मुक्त व्यापार समझौतों के अतिरिक्त स्विट्जरलैंड, नार्वे, आइसलैंड और लिकटेंस्टीन वाले यूरोपीय मुक्त व्यापार संघ (एफ्टा) के साथ 2024 में किया गया एफटीए भी अब लागू हो चुका है। सभी एफटीए में भारत के कृषि और डेरी क्षेत्रों को सुरक्षित रखा गया है। न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया जैसे बड़े वैश्विक डेरी निर्यातकों के साथ समझौतों में भी यह शामिल है। इनसे भारतीय निर्यात को त्वरित या शीघ्र टैरिफ समाप्ति का लाभ मिलता है, जबकि भारत में बाजार खोलना संतुलित और चरणबद्ध रखा गया है। न्यूजीलैंड ने अगले 15 वर्षों में 20 अरब अमेरिकी डॉलर के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की प्रतिबद्धता जताई है, जो भारत द्वारा एफ्टा देशों के साथ किए गए मुक्त व्यापार समझौते में अपनाए गए नवोन्मेषी निवेश-संबद्ध प्रविधानों को प्रतिबिंबित करता है। यह निवेश कृषि, डेरी, एमएसएमई, शिक्षा, खेल और युवा विकास में सहायक होगा, जिससे समावेशी और व्यापक विकास सुनिश्चित होगा।

2024-25 तक के पिछले 11 वित्तीय वर्षों में भारत ने 748 अरब अमेरिकी डालर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आकर्षित किया, जो उससे पहले के 11 वर्षों में आए 308 अरब अमेरिकी डालर से लगभग ढाई गुना है। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि मोदी सरकार को एक समय फ्रेजाइल फाइव कही जाने वाली अर्थव्यवस्था विरासत में मिली थी। भ्रष्टाचार-मुक्त शासन, साहसिक सुधारों और वित्तीय अनुशासन के जरिये उन्होंने भारत को व्यापार और निवेश के लिए पसंदीदा गंतव्य बनाया। भारत ने 2025 का समापन एक बड़ी उपलब्धि के साथ किया, जापान को पीछे छोड़ते हुए विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनना और अब जर्मनी को पीछे छोड़ने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ना।

श्रमिकों के लाभ बढ़ाने के लिए मोदी सरकार ने ऐतिहासिक श्रम सुधार किए हैं, जिनके तहत 29 खंडित कानूनों को चार आधुनिक श्रम संहिताओं में समाहित किया गया है। इनका उद्देश्य उचित वेतन, समय पर भुगतान, सामाजिक सुरक्षा और संरक्षण सुनिश्चित करना है, साथ ही महिलाओं की कार्यबल में भागीदारी बढ़ाना है। जीएसटी सुधारों से हर भारतीय नागरिक

को लाभ हुआ है, जिससे एक स्वच्छ दो-स्लैब संरचना बनी है। इससे घरों, एमएसएमई, किसानों और श्रम-प्रधान क्षेत्रों पर बोझ कम होगा। 2025 एक सेतु-निर्माण का वर्ष रहा। आगे और भी उत्साहजनक कदम आने वाले हैं। नीति आयोग के सदस्य राजीव गौबा के नेतृत्व में एक पैनल व्यापक सुधारों का अध्ययन कर रहा है, जो प्रधानमंत्री की 'रिफार्म एक्सप्रेस' को और तेज करेगा। भारत का लक्ष्य स्पष्ट है, प्रतिस्पर्धी व्यापार, नवोन्मेषी उद्योग और एक मजबूत, आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के माध्यम से 'विकसित भारत' का निर्माण। भारत के निर्यातकों, निर्माताओं, किसानों और सेवा प्रदाताओं की सफलता ही राष्ट्र की सफलता है। भारत सिर्फ भविष्य की तैयारी नहीं कर रहा, वह उसे आकार दे रहा है। निर्णायक नेतृत्व, साहसिक सुधारों और स्पष्ट वैश्विक रणनीति के साथ भारत अपनी शर्तों पर एक मजबूत, आत्मनिर्भर और विश्वसनीय राष्ट्र के रूप में दुनिया से जुड़ रहा है।

Date: 17-01-26

सबक सिखाती अमेरिकी शिक्षा व्यवस्था

क्षमा शर्मा, (लेखिका साहित्यकार हैं)

एक आंकड़े के अनुसार अमेरिका के निजी विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों में 61 प्रतिशत से लेकर 83 प्रतिशत तक छात्र कर्ज लेते हैं। जो कालेज निजी और सरकारी मदद, दोनों से चलते हैं, वहां 54 से 61 प्रतिशत और सरकारी संस्थान जिन्हें पब्लिक इंस्टीट्यूशन कहा जाता है, वहां भी 33 से 49 प्रतिशत छात्रों को कर्ज लेना पड़ता है। अमेरिकी शिक्षा विभाग की प्रमुख एजेंसी नेशनल सेंटर फार एजुकेशन स्टैटिस्टिक्स के अनुसार कर्ज की यह राशि हर साल बढ़ती ही जाती है। आज यह राशि अरबों में जा पहुंची है। इस पर लगाने वाले ब्याज की दर भी बहुत ज्यादा होती है।

पिछले साल अमेरिका में हर छात्र के ऊपर 39,375 डालर का कर्ज था। वर्ष 2007 की तुलना में यह तीन गुना अधिक है। आम तौर पर वहां मध्य वर्ग के बच्चे कर्ज के बोझ से दबे रहते हैं। मैरीलैंड, जार्जिया, वर्जीनिया जैसे राज्यों के छात्र ज्यादा कर्ज लेते हैं। नौकरी के बाद वे लंबे समय तक कर्ज चुकाते रहते हैं। अधिकांश छात्र 35 से लेकर 49 साल की उम्र तक कर्ज चुकाते हैं। एक तरह से उम्र का बड़ा हिस्सा कर्ज चुकाने में ही निकल जाता है। इसी संदर्भ में हाल में विचारक एस. गुरुमूर्ति एक इंटरव्यू में बता रहे थे कि अधिकांश अमेरिकी बच्चे कर्ज लेकर पढ़ाई करते हैं। जबकि भारतीय लोग अपने परिवार को प्राथमिकता देते हैं। इसलिए बच्चों की पढ़ाई पर खर्च करते हैं। वास्तव में हर भारतीय माता-पिता चाहता है कि उनका बच्चा खूब पढ़े-लिखे। इसके लिए वे अपने सभी संसाधन दांव पर लगा देते हैं। कई बार तो अपना खेत तक बेच देते हैं। कर्ज भी लेना पड़े तो उसकी जिम्मेदारी खुद ही उठाते हैं। कुछ साल पहले जिनेवा में काम करने वाले एक ऐसे अमेरिकी से मिली थी, जो पचास साल से अधिक था, लेकिन अभी तक शिक्षा के लिए कर्ज को चुका रहा था। उसका कहना था कि वह इतने पैसे नहीं कमाता कि परिवार का बोझ भी उठा सके और शिक्षा के लिए जो कर्ज लिया था, उसकी किस्त भी हर महीने भर सके। अमेरिका में आमतौर पर दस से लेकर तीस वर्ष तक कर्ज की किस्तें भरनी पड़ती हैं। वहां कहा जाता है कि एक बार कर्ज के चक्कर में फंसे तो जीवन भर उसी में फंसे रहते हैं। कर्ज चुकाने में अधिक वर्ष लगने का आशय अधिक ब्याज चुकाना भी है। कल्पना करना कठिन नहीं कि क्यों अमेरिका में बहुत से बच्चे स्कूली शिक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ देते हैं, क्योंकि उच्च शिक्षा के संसाधन जुटाना उनके वश का नहीं होता। इसलिए बहुत से युवा किसी न किसी काम

में लग जाते हैं। जिस शिक्षा के बारे में कहा जाता है कि वह हर एक के लिए उपलब्ध होनी चाहिए, वास्तव में ऐसा है नहीं।

इन दिनों कृत्रिम मेधा यानी एआइ के आने के डर से अमेरिका में भी रोजगार के मौके लगातार कम हो रहे हैं। वहां बड़ी-बड़ी कंपनियां हजारों की संख्या में लोगों को नौकरी से निकाल रही हैं। इनमें से जो लोग अमेरिकी नागरिक नहीं हैं, वे रोजगार के लिए लगने वाले मेलों में अपना सीवी लेकर जा रहे हैं, तो उनसे पहला सवाल यही पूछा जा रहा है कि वे अमेरिकी नागरिक हैं या नहीं? न कहते ही उनका सीवी बिना देखे लौटा दिया जा रहा है। इनमें से अधिकांश वे लोग हैं, जो अमेरिका में ही पढ़े हैं। इनमें से बहुतों ने पढ़ने के लिए कर्ज भी लिया होगा। जब वहां रोजगार ही नहीं होगा, तो छात्र कर्ज की किस्तें कहां से चुकाएंगे? लगता है वहां जल्दी ही वह समय आएगा, जब बच्चे उच्च शिक्षा इसलिए लेना बंद कर देंगे, क्योंकि नौकरी की कोई गारंटी नहीं होगी। ऐसे में तब उन विश्वविद्यालयों का क्या होगा, जो मशहूर होने के नाम पर इतराते हैं और छात्रों से भारी-भरकम फीस वसूलते हैं। जब वहां छात्र पढ़ने ही नहीं आएंगे, तो वे कर्ज भी नहीं लेंगे। तब जाहिर है कि वे कंपनियां भी खत्म हो जाएंगी, जो कर्ज देती हैं।

अमेरिका के विपरीत भारतीय लोगों में परिवार के प्रति जो आस्था है, वह बेमिसाल है। यहां आज भी बहुत से परिवारों में तीन पीढ़ियां एक साथ रहती मिल जाएंगी। जबकि अमेरिका में यह संभव नहीं है। न केवल अमेरिका, बल्कि अनेक पश्चिमी देशों में यही हाल है। वहां अकेलेपन को एक गुलाबी तस्वीर की तरह प्रस्तुत किया जाता है। वहां बच्चे अकेले रहते हैं। बुढ़ापे में माता-पिता और दादा-दादी भी अकेले ही रहते हैं। पश्चिम में देखभाल को भी पैसे से जोड़कर केयर इकोनमी का नाम दिया गया है, लेकिन अपने यहां परिवार ही है, जो किसी आफत में सबसे पहले दौड़ता है। भारतीय माता-पिता अपनी सुविधा छोड़कर बच्चों के सुख पर ध्यान देते हैं। ऐसा नहीं है कि अमेरिका में परिवार के महत्व को पहचाना नहीं जाता। अमेरिका के पूर्व उपराष्ट्रपति अल गोर की पत्नी तो परिवार की वापसी का नारा 1993 से लगा रही हैं। राष्ट्रपति ट्रंप ने अपने चुनावी अभियान में परिवार के महत्व को बारंबार रेखांकित किया था, लेकिन पश्चिम ने जिस परिवार को अपने हाथों से नष्ट किया है, वह उसकी वापसी का चाहे जितना नारा लगा ले, अब वापस नहीं आने वाला। अमेरिकी समाज और छात्रों की इस स्थिति से हम भारतीय सबक जरूर ले सकते हैं।

जनसत्ता

Date: 17-01-26

रोजगार संकट

संपादकीय

देश में पिछले कुछ वर्षों से बेरोजगारी एक गंभीर मुद्दा बना हुआ है। इससे बड़े स्तर पर युवा श्रम शक्ति का इस्तेमाल नहीं हो पा रहा है और यह राष्ट्र के संपूर्ण विकास में भी अवरोध पैदा कर रहा है। किसी भी अर्थव्यवस्था को तभी संतुलित माना जाता है, जब उसमें आर्थिक विकास के साथ-साथ रोजगार के नए अवसर भी सृजित होते हों। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में कुल कार्यबल तथा जनसंख्या के लिहाज से भारत दुनिया का सबसे बड़ा देश है। यहां युवाओं की आबादी अन्य देशों की तुलना में अधिक है। मगर इस कार्यबल को व्यापक रूप से राष्ट्र के निर्माण में भागीदारी के समान अवसर नहीं मिल पा रहे हैं। इसका आकलन केंद्रीय सांख्यिकी एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय की ओर से गुरुवार को जारी रपट से किया जा सकता है। इसमें कहा गया है कि देश में पंद्रह वर्ष और उससे अधिक उम्र के लोगों के बीच बेरोजगारी दर पिछले वर्ष दिसंबर में बढ़कर 4.8 फीसद पर पहुंच गई, जबकि नवंबर में यह आंकड़ा 4.7 फीसद था। शहरी क्षेत्र में बेरोजगारी का असर ज्यादा रहा, जहां इसकी दर नवंबर में 6.5 फीसद से बढ़कर 6.7 फीसद हो गई। इससे स्पष्ट है कि सरकारी और निजी संगठित एवं असंगठित क्षेत्रों में रोजगार के अवसर घट रहे हैं।

गौरतलब है कि केंद्र सरकार की ओर से 'आत्मनिर्भर भारत' और 'स्किल इंडिया' जैसी योजनाओं की शुरुआत की गई है, लेकिन इनका असर विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग रहा है। कई युवा और श्रमिक वर्ग अपने कौशल को विकसित करने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं, इसके बावजूद उन्हें रोजगार के पर्याप्त अवसर नहीं मिल पा रहे हैं। कृत्रिम मेधा और डिजिटलीकरण के कारण भी रोजगार में कमी आई है। हालांकि, डिजिटल क्षेत्र में रोजगार के नए अवसर सृजित हुए हैं, लेकिन इनमें भी विशेष कौशल की आवश्यकता होती है, जो हर किसी के पास नहीं है। इसमें दोराय नहीं कि रोजगार की मांग के अनुपात में सरकारी नौकरियों की संख्या में वृद्धि नहीं हो पा रही है। इसके अलावा, सरकारी भर्ती प्रक्रियाओं में देरी और परीक्षा प्रणाली के मुद्दे भी रोजगार हासिल करने के समान अवसरों को प्रभावित करते हैं। हालांकि आंकड़ों के हिसाब से देखें तो शहरों के मुकाबले ग्रामीण क्षेत्रों में राहत की बात यह है कि वहां पिछले वर्ष नवंबर से दिसंबर के बीच बेरोजगारी दर 3.9 फीसद पर स्थिर है।

दरअसल, किसी भी देश में संपूर्ण आर्थिक विकास तभी संभव हो पाता है, जब सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि हो, प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोतरी तथा गरीबी, भुखमरी और सामाजिक असमानता में कमी आए तथा रोजगार की उपलब्धता और प्रति व्यक्ति खुशहाली हो। विकास का माडल ऐसा होना चाहिए, जिसमें रोजगार के अवसर, गरीबों का उत्थान और किसानों की समृद्धि सुनिश्चित हो सके तथा महंगाई की दर कम रहे। सवाल है कि केंद्र सरकार ने वर्ष 2047 तक विकसित भारत का जो लक्ष्य रखा है, क्या मौजूदा परिस्थितियों की लिहाज से उसे तय समय में हासिल किया जा सकेगा! यह सच है कि बेरोजगारी दर में उतार-चढ़ाव से देश के विकास पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है। ऐसे में सरकार को चाहिए कि बेरोजगारी दर में कमी लाने के लिए शिक्षा को कौशल विकास से जोड़ने को प्राथमिकता दी जाए और सरकारी एवं निजी क्षेत्र में रोजगार के नए अवसर सृजित किए जाएं। तभी भारत सही मायने में एक विकसित राष्ट्र बनने की दिशा में आगे बढ़ पाएगा

Date: 17-01-26

विकल्प का ईंधन

संपादकीय

जीवाश्म ईंधन के अंधाधुंध इस्तेमाल से बढ़ते जलवायु संकट के बीच पूरी दुनिया में स्वच्छ ईंधन की जरूरत महसूस की जाने लगी है। मगर इस दिशा में प्रयास बहुत कम हो रहे हैं। स्वच्छ ईंधन और नवीकरणीय ऊर्जा को लेकर योजनाएं तो बन रही हैं, लेकिन उनके क्रियान्वयन की गति बेहद धीमी है, जबकि जीवाश्म ईंधन पर अब भी ज्यादा जोर दिया जा रहा है। इससे स्पष्ट है कि जलवायु परिवर्तन को लेकर वैश्विक स्तर पर चिंता तो है, लेकिन इससे निपटने के उपायों पर गंभीरता से काम नहीं हो पा रहा है। विश्व आर्थिक मंच की ओर से हाल में जारी एक रपट में भी इसका उल्लेख किया गया है। इसमें कहा गया है कि स्वच्छ ईंधन से जुड़े लक्ष्यों को हासिल करने के लिए वर्ष 2030 तक निवेश को चार गुना बढ़ा कर सालाना सौ अरब डालर करने की आवश्यकता है। जाहिर है कि अगर इस तरह की चेतावनियों और सुझावों को गंभीरता से नहीं लिया गया, तो भविष्य में इसके भयावह परिणाम सामने आ सकते हैं।

गौरतलब है कि दुनिया भर में इस समय स्वच्छ ईंधन पर सालाना करीब पच्चीस अरब डालर ही निवेश हो रहा है। दरअसल, स्वच्छ ईंधन को लेकर दावे तो बहुत किए जाते हैं, लेकिन इससे संबंधित योजनाओं की लागत अधिक होने से कई देश पीछे हट जाते हैं। वहीं सबसे अधिक कार्बन उत्सर्जन कर रहे विकसित देश खुद इसमें कटौती करने के बजाय छोटे और विकासशील देश पर नाहक दबाव बनाते रहे हैं। ऐसे में स्वच्छ ईंधन को साझा प्रयासों से प्रोत्साहित करने का वैश्विक लक्ष्य कहीं पीछे छूट जाता है। इसमें दोराय नहीं कि जलवायु संकट से निपटने की दिशा में स्वच्छ ईंधन अहम भूमिका निभा सकता है। इसके इस्तेमाल से उद्योगों और परिवहन क्षेत्र में बढ़ते उत्सर्जन को धीरे-धीरे कम किया जा सकता है। लिहाजा स्वच्छ ईंधन के इस्तेमाल के लक्ष्य को जमीन पर उतारने के लिए न केवल भरोसेमंद और निवेश-योग्य परियोजनाएं बनानी होंगी, बल्कि उन्हें सख्ती से लागू भी करना होगा। जीवाश्म ईंधन के निरंतर इस्तेमाल से पूरी दुनिया में वायु प्रदूषण की समस्या भी गंभीर होती जा रही है। इस संकट से बचने के लिए स्वच्छ ईंधन और नवीकरणीय ऊर्जा ही बेहतर विकल्प है।